वीर संवत् २४९२, पोष कृष्ण १०, रविवार
दि. १६-१-१९६६, श्लोक १ से ३, प्रवचन नं. १

यह एक छहढाला है। 'छहढाला' अर्थात् छह प्रकार के राग की चाल है अथवा 'छहढाला' अर्थात् आत्मा को मिथ्यात्व और अज्ञान शत्रु को जीतने के लिए एक उपायरूप ढाल, उसे यहाँ 'छहढाला' कहा जाता है। एक अध्यात्म प्रिय 'दौलतरामजी' हुए हैं, उन्होंने यह रचना की है। अन्दर सब शास्त्रों का उनकी शक्ति अनुसार निचोड़ करके गागर में सागर भर दिया है। गागर में सागर भर दिया है। संक्षिप्त में शास्त्र का रहस्य थोड़ा... थोड़ा... थोड़ा... (करके) सब बहुत बातें इसमें रख दी है। यह प्रचलित है लड़को में, अपने पाठशाला में भी (प्रचलित है)

ॐ मंगलाचरण, पहली ढाल।

'**तीन भुवन में सार, वीतराग-विज्ञानता;**'

तीन भुवनमें सार, वीतराग विज्ञानता;
शिवस्वरूप शिवकार, नमहुँ त्रियोग सम्हारिकैं

यह सोरठा है, सौरठा। ऐसे तो दो-दो बार बोलें, परन्तु यह सोरठा में दो बार नहीं। तीन भुवन में सार.. तीन भुवन में सार... ऐसा नहीं, सही देशी अर्थ ऐसा नहीं है। जैसा हो, वैसा कहा जाता है न वहाँ, यह राणकदेवी सोरठा बोलती है न ! 'मा पर मारा वीर, चौसला कौन चढ़ावशे' राणकदेवी, जब राजा मरता है, फिर पर्वत है, वहाँ से नीचे गिरती है, 'गिरनार।' यह सोरठा है वहाँ, ऐसा कहते हैं।

तीन भुवनमें सार, वीतराग विज्ञानता;
शिवस्वरूप शिवकार, नमहुँ त्रियोग सम्हारिकैं।।१।।

कहो, समझ में आया इसमें ? हैं ? यह देशी समझ में आया ? ऐसा कहा। यह देशी ऐसा है - ऐसा समझ में आया ? ऐसा कहा है। ऐ... देवानुप्रिया ! क्या कहा ? देखो अब !

'**(वीतराग)...**' '**राग-द्वेष रहित,...**' मांगलिक रूप से पहला शब्द यहाँ से शुरू किया है। राग-द्वेष रहित विज्ञानता। वि-शेष, ज्ञान अर्थात् केवलज्ञान। विज्ञानता में लिया है न ! वि...ज्ञानता; ज्ञान तो है परन्तु यह विज्ञानता-विशेष पूर्णज्ञान - ऐसा केवलज्ञान ! देखो, यहाँ मांगलिक में केवलज्ञान का स्मरण करते हैं। सावधानीपूर्वक करते हैं - ऐसा कहते हैं, हों !

विज्ञान अर्थात् केवलज्ञान; तीन भुवन में ऐसा कहकर तीन लोक सिद्ध करते हैं। इस जगत में तीन लोक हैं। लोक एक, उसके तीन भाग हैं - उर्ध्व, मध्य और तिरछा .... ऐसे तीन लोक; एक लोक के तीन भाग। इन तीनों मैं, देखो ! तीन लोक है - ऐसा सिद्ध करते हैं। 'सार' उत्तम वस्तु है। यह केवलज्ञान, राग-द्वेषरहित स्वरूप यह इस जगत में सार में सार है। समझ में आया ? यह एक प्रयोजनभूत है।

वैसे वस्तुरूप से तो सभी सार कहलाती है। ऐसे समयसार कहलाता है न ? वह आत्मा का समय आत्मा के अर्थ में हैं, यहाँ पर केवलज्ञान के अर्थ में 'सार' है। समझ में आया ? समयसार (अर्थात्) सम्यक् प्रकार से अय - ज्ञान का परिणमन, विकार रहित; यह आत्मद्रव्य की बात है। यहाँ केवलज्ञान की पर्याय सार में सार प्रगट करने योग्य है; इसलिए उसे सार में सार कहा गया है। समझ में आया ? तीन लोक में, राग-द्वेष रहित वस्तु केवलज्ञान उत्तम पदार्थ है। ओ..हो..! वह केवलज्ञान चाहिए है न ? धर्मात्मा को केवलज्ञान चाहिए।

'श्रीमद्' भी अन्तिम कलश में कहते हैं न ? 'इच्छे छे जे योगीजन, अनन्त सुख स्वरूप' आता है ? 'मूल शुद्ध ते आत्मरूप सयोगी जिन स्वरूप।' देखो, वहाँ ऐसा लिया है। 'मूल शुद्ध ते आत्मरूप, सयोगी जिन स्वरूप' - वहाँ लिया है भाई ! वहाँ केवलज्ञान लिया है। 'इच्छे छे जे योगीजन।' यहाँ आयेगा तब इसमें आगे कहेंगे, हों ! 'इच्छे छे जे योगीजन अनन्त सुख स्वरूप; मूल शुद्ध ते आत्मरूप।' आत्मपद। मूल शुद्ध, वह आत्मपद, परन्तु वह आत्मपद पर्यायवाला लिया है। 'सयोगी जिनस्वरूप, भले सयोग हो, परन्तु केवलज्ञान पर्याय प्रगट हुई, बस ! मोक्ष हो गया। समझ में आया ?

यह इस तीन लोक में - उर्ध्व में स्वर्ग में सर्वार्थसिद्धि के विमान; मध्य में बहुत रचनायें; अधो में नारकी, भवनपति इत्यादि की रचनायें, इन सब में सार एक ज्ञान की वीतरागता - पूर्णस्वरूप, यही जगत में सार है, यही मक्खन है; यही आत्मा को प्रगट करने योग्य है; इसलिए वह वन्दन

करने योग्य है।

कैसा है केवलज्ञान ? '**(शिवस्वरूप)...**' है (अर्थात्) '**आनन्दस्वरूप...**' है। ज्ञान और आनन्द दो साथ डाले हैं (क्योंकि) मूलवस्तु है। दो डालते हैं। जहाँ-जहाँ; ज्ञान और आनन्द, बस ! ज्ञान और आनन्द। वह ज्ञान, आनन्दस्वरूप है, सुखरूप है, अतीन्द्रिय अनाकुल शान्तरस के साथ परिणमता केवलज्ञान होता है; इसलिए उसे शिव-उपद्रव रहित, कल्याणस्वरूप; कल्याण अर्थात् आनन्दस्वरूप - ऐसी उसकी व्याख्या की है। शिवका अर्थ तो कल्याणस्वरूप है; शिव का अर्थ उपद्रवरहित है, क्लेश रहित है अर्थात् आनन्दसहित है, ऐसा। आनन्द स्वरूप - यह वीतराग केवलज्ञान आनन्द स्वरूप है। जगत को आनन्द चाहिए है न ? तो कहते है कि केवलज्ञान ही आनन्दस्वरूप है। '**मोक्ष की प्राप्ति करानेवाला है...**' यह केवलज्ञान हुआ, अर्थात् उसे मोक्ष होकर ही रहेगा। यह भावमोक्ष है, द्रव्यमोक्ष हो जाता है। '**मोक्ष की प्राप्ति करानेवाला...**' केवलज्ञान और आनन्द है।

'**उस मैं... (त्रियोग) अर्थात् तीन योग की...**' मन-वचन और काया की, '**(सम्हारिकैं...)**' अर्थात् '**सावधानी से...**' देखा ? सावधानी से। उस वीतराग केवलज्ञान को, वीतराग-विज्ञान को (नमस्कार करता हूँ।) वीतराग-विज्ञान तो छद्मस्थ में भी होता है। समझ में आया ? 'परमात्म प्रकाश' में बहुत जगह आया है। वीतराग, विज्ञानदशा, मुनि को वीतराग-विज्ञानदशा होती है। यह तो वीतरागी-विज्ञान केवलज्ञान को (कहा है।) जिसके फलरूप पूर्णदशा हुई, उसेयहाँ वीतराग-विज्ञान कहा गया है। कहते हैं, उसे तीन योग की सावधानी से '**नमस्कार करता हूँ।**' हमारे नमन करनेयोग्य, आदर करनेयोग्य हितरूप गिनकर सावधानरूप से प्रगट करनेयोग्य होवे तो यह वीतराग-विज्ञान केवलज्ञान है। उसे ही मैं नमस्कार करता हूँ। मेरा अन्तर झुकाव केवलज्ञान की पर्याय को ही नमन करता है। कहो, समझ में आता है ? अर्थात् ऐसा करके केवलज्ञान एक पर्याय है - ऐसा सिद्ध किया। आत्मद्रव्य में सामर्थ्य है, परन्तु केवलज्ञानपर्याय प्रगट करे - यह उसकी ताकात है। एक समय में तीन काल - तीन लोक को जाने ऐसी एक समय की पर्याय, ऐसी आत्मद्रव्य की एक समय की ज्ञान की पर्याय की ताकात है - ऐसी सामर्थ्य से उसे नमस्कार किया है। ऐसी सामर्थ्य गिनकर उसे वन्दन किया गया है।

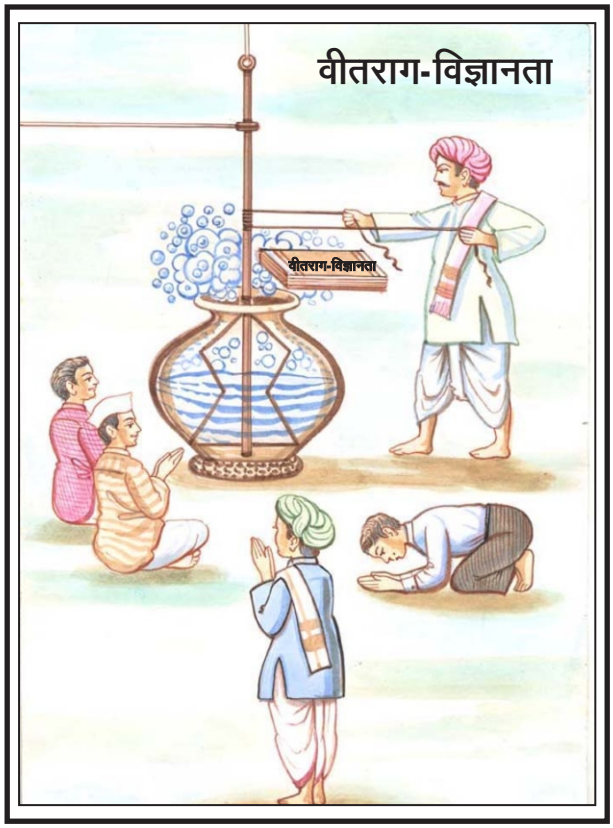

भावार्थ :- इसमें वह रखा है न जरा ! चित्र... चित्र। तीनलोक रखे हैं, समझे न ? देखो न ! लोक रखा है न ? यह लोक उर्ध्व, मध्य और पाताल (तिरछा) सब उसे नमस्कार करते हैं। देखो ! अपने में नहीं है, उसमें - हिन्दी में है। यहाँ कहते हैं, देखो ! मंथन करते है न ? इस तीन लोक का मंथन करते हैं। मंथन करके निकालने योग्य सार हो तो, मक्खन हो तो केवलज्ञान है - ऐसा कहते हैं। कहते है न ? एक यह ध्यान में रहता है। यह तीन लोक है, इसमें यह रवैया। रवैया कहते है न ? क्या कहलाता है ? क्या कहते हैं ? मथानी। मंथन करने में सार मक्खन निकालने योग्य होवे तो वीतराग केवलज्ञान है - ऐसा कहते हैं। देखो, चित्र भी ठीक दिया है, हों ! अपने नए में है, उस हिन्दी में हिन्दी में। इस हिन्दी में है। है न, यहाँ सब है यहाँ है। यह रही, हाँ ! यहाँ सब एक-एक है। यहाँ सब साथ रखी है। वह तो उसमें चित्र बराबर नहीं है, इसमें चित्र जरा ठीक है।

तीनलोकरूपी एक बड़ा मक्खन का... समझ में आता है ? क्या कहलाता है ? गोली... गोली ! गोली नहीं आयी तुम्हारी। तीनलोकरूपी गोली ! उसमें मंथन करके निकालने योग्य मक्खन होवे तो केवलज्ञान है - ऐसा कहते हैं, लो ! देखो न ! यह बताया है न ? यह क्या कहलाता है ? देखो न ! क्या कहलाता है ? गोल जैसा यह सामने बताया है न ? बड़ा बर्तन, बर्तन देखो न ! बर्तन जैसा आकार दिया है, देखो न ! है वहाँ ? बर्तन जैसा आकार देकर और उसमें मंथन करके

तीन लोक में से आत्मा के ज्ञानानन्द स्वरूप का मंथन करके केवलज्ञान प्रगट करना, यह सार में सार है - ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? उसे सब नमस्कार करते हैं, देखो ! इस और, इस और यह मुनि मंथन करते हैं, देखो ! ध्यान में। मुनि दिये है न ? ध्यान में। केवलज्ञान, इस जगत में सार में सार वीतराग केवलज्ञान है - ऐसा कहकर एक-एक आत्मा की केवलज्ञानदशा वीतरागता प्रगट होती है - ऐसी आस्थारूप से इस बात को सिद्ध करके उसे नमस्कार किया है। समझ में आया ? एक समय में ! आहा..हा..! राग-द्वेष की कल्पना गयी, ज्ञान की पूर्ण पर्याय हुई - ऐसा कहते हैं। वीतराग-विज्ञानता कहा है न ? अर्थात् राग-द्वेष की विकारी पर्याय गयी, वीतराग पर्याय हुई, वीतरागता के साथ केवलज्ञान पूर्णदशा तुरन्त ही प्रगट हुई - ऐसी एक आत्मा में, एक समय में ऐसी ताकत है - ऐसी उसकी प्रतीति और श्रद्धा करके, उसे प्रगट करने के लिए हम उसे वन्दन, सत्कार और उसका ही आदर करते हैं।

देखो ! भावार्थ में थोड़ा लिखा है। '**राग-द्वेष रहित केवलज्ञान उर्ध्व, मध्य और पाताल - तीन लोक में उत्तम...**' सार का अर्थ उत्तम किया है। '**आनन्दस्वरूप और मोक्ष देनेवाला है।**' यह केवलज्ञान आनन्दस्वरूप और मोक्ष देनेवाल। हों ! केवलज्ञान ही मोक्ष-पूर्ण सिद्धपद को देनेवाला है। '**इसलिए मैं 'दौलतराम' अपने त्रियोग...**' अथवा उसे याद करनेवाला, केवलज्ञान को प्रगट करने का अभिलाषी। यह स्वतं ग्रन्थकार कहते हैं '**मन-वचन और काययोग द्वारा सावधानी से...**' अत्यन्त ही सावधानी से ऐसे वीतराग केवलज्ञान को मैं (नमस्कार करता हूँ) देखो ! सावधानी मे ज़रा राग के अभाव की सावधानी की है, कही है। 'सावधानी' शब्द का प्रयोग किया है न ? अर्थात् मोह का अभाव - ऐसी सावधानी को प्रगट करके ऐसे केवलज्ञानी वीतराग परमात्मा को मैं '**नमस्कार करता हूँ।**' वे वीतराग कैसे है ? अठारह दोष रहित हैं। उन्हें क्षुधा नहीं, तृषा नहीं, रोग नहीं... ऐसे अठारह दोष आते हैं न ? (वे) नहीं - ऐसे केवलज्ञान को नमस्कार करता हूँ। लो !

ग्रन्थ-रचना का उद्देश्य और जीवों की इच्छा

जे त्रिभुवनमें जीव अनन्त, सुख चाहैं दुखतैं भयवन्त;
तातैं दुखहारी सुखकार, कहैं सीख गुरु करूणा धार।।१।।

अन्वयार्थ :- (त्रिभुवनमें) तीन लोकमें (जे) जो (अनन्त) अनन्त (जीव) प्राणी [हैं वे] (सुख) सुखकी (चाहैं) इच्छा करते हैं और (दुखतैं) दुःखसे (भयवन्त) डरते हैं (तातैं) इसलिये (गुरु) आचार्य (करुणा) दया (धार) करके (दुखहारी) दुःख का नाश करनेवाली और (सुखकार) सुख को देनेवाली (सीख) शिक्षा (कहैं) कहते हैं।

भावार्थ :- तीन लोक में जो अनन्त जीव (प्राणी) हैं वे दुःख से डरते हैं और सुख को चाहते हैं, इसलिये आचार्य दुःखका नाश करनेवाली तथा सुख देनेवाली शिक्षा देते हैं।।२।।

अब, '**ग्रन्थ रचनाका उद्देश्य और जीव की चाह...**' देखो ! उद्देश्य क्या है ? ओर जीव को मूल सुख की चाहना है। इसमें अनन्त प्राणी लेंगे, हों ! निगोद से लेकर अनन्त जीवों को सुख की चाहना है। समझ में आया ?

'**जे त्रिभुवनमें जीव अनन्त, सुख चाहैं दुखतैं भयवन्त;**'

जे त्रिभुवनमें जीव अनन्त, सुख चाहैं दुखतैं भयवन्त;
तातैं दुखहारी सुखकार, कहैं सीख गुरु करुणा धार।।१।।

शब्द भी ऐसे रचे हैं न ! तीन भुवन में - तीन लोक में। एक बात सिद्ध की। पहले वहाँ कहा था न - तीन लोक में सार। पहले शब्द में कहा था '**तीन भुवन में सार;**' अब कहते हैं, तीन लोक में जितने जीव है - अनन्त जीव हैं। समझ में आया ? अनन्त जीव हैं, इसमें इन्होंने ज़रा गति रखी

है, देखो ! चित्र में इस ओर; जीव अनन्त - इसमें रखा है - स्वर्ग का देव, गति है न ? यहाँ मनुष्य; यहाँ पशु (तीर्यञ्च) और नारकी - चार चित्र चित्रित किये हैं। चारों का नमूना दिया है। देव, मनुष्य, तिर्यञ्च, नारकी। वह मारता है। इन तीन भुवन में इन चारगतियों के अनन्त जीव है - ऐसा सिद्ध करते हैं। समझ में आया ? अनन्त जीव हैं। भले ही निगोद में अनन्त है और दूसरे मनुष्य, देव, नारकी असंख्य है। इसलिए इन्होंने चार गति का समुच्चय फोटो दिया है।

तीन भूवन में '**जो अनन्त प्राणी है...**' उन अनन्त प्राणियों में, इन चार गति के जीवों को यहाँ चित्र में थोड़ा-सा बताया है। '**वे सुख को चाहते हैं...**' यह सिद्धान्त। जगत को सुख की छटपटाहट है, सुख चाहते हैं। निगोद से लेकर सब प्राणी सुख चाहते हैं। सुख चाहते हैं परन्तु सुख कहाँ है ? और उपाय क्या है ? इसका पता नहीं है। सुख चाहते हैं - यह एक ही सिद्धान्त यहाँ सिद्ध किया है। समझ में आया ? सुख को नहीं चाहते, वे जड़। 'श्रीमद्' ने एक जगह कहा है न भाई ! प्रत्येक प्राणी सुख को ही चाहता है, देखो ! मर कर भी सुख को चाहता है न ? मर जाऊँ; अमुक प्रतिकूलता आयी तो छोड़ दूँ, परन्तु प्रतिकूल छोड़कर सुखी होऊँ। यहाँ एकेन्द्रिय से लेकर सभी प्राणी लिये हैं, क्योंकि उनके आत्मा में सुखरूप आत्मा है; स्वभाव सुखरूप है, इसलिए सुख की अपेक्षा (रखकर सुख प्राप्त करने के लिए) बाहर में लगते है। उस प्रत्येक को सुख की इच्छा है। समझ में आया ? और सुख को चाहता है - ऐसा है न ? चाहना है, प्रत्येक प्राणी को सुख की चाहना है।

'**दुःख से डरता है...**' अस्ति-नास्ति की है। सुख की भावना है, दुःख से डरता है, दुःख से

त्रास पाता है... परन्तु दुःख किसे कहना ? और सुख किसे कहना ? इसका इसे पता नहीं है, इसलिए यहाँ उपदेश शुरू करते हैं - ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? '**दुःख से डरता है, इसलिए (गुरु)...**' है न ? '**आचार्य...**' महासन्त मुनि दिगम्बर आचार्य गुरु है न ? वे ही आचार्य सच्चे होते हैं। गुरु है न ? गुरु ! गुण में बड़े, ज्ञान-दर्शन-चारित्र में (बड़े) ऐसे महान दिगम्बर आचार्य (होते हैं)।/ 'दौलतरामजी' के अभिप्राय में ऐसा है। महान निर्ग्रन्थ आचार्य दिगम्बर मुनि, वे गुरु'**करुणा करके...**' देखो ! दया का भाव आता है। जगत के प्राणियों को दुःखी देखकर, स्वयं को किंचित् राग है, इसलिए करुणा आती है।

'करुणा उपजे जोई' - 'श्रीमद्' में आता है न ? 'कोई क्रिया जड़ हो रहे, शुष्कज्ञान में कोई; माने मारग मोक्ष का करुणा उपजे जोई।' यहाँ तो 'दौलतरामजी' यह कहना चाहते हैं (कि) आचार्य महाराज दिगम्बर सन्त महानिर्ग्रन्थ मुनि थे। वीतराग-विज्ञानता प्राप्त करने के अभिलाषी। वीतराग-विज्ञानता (जो) केवलज्ञान कहा; वीतराग विज्ञानता - ऐसी वीतराग-विज्ञानता के साधक, ऐसे आचार्य, सन्त, गुरु यह शिक्षा देते हैं। 'दया करके...' फिर दया करके, हों ! करुणा का विकल्प है, अरे...! जग के प्राणी ! 'मोक्षमार्गप्रकाशक' में आता है न ? धर्म के लोभी को देखकर किञ्चित् शुभराग होता है तो वे आचार्य जगत को उपदेश करते हैं। समझ में आया ? धर्म के लोभी जीव होवे तो, हों !

मुमुक्षु :- ...

उत्तर :- हाँ, किन्तु गुरु कहते हैं। ऐसा कि मैं अपने घर की बात नहीं करता। आचार्य - गुरु कहते हैं, ऐसा कहते हैं। गुरु ने उपदेश दिया, वह मैं कहूँगा - ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? देखो ! इन्होंने पहले सिर पर गुरु को रखा है। गुरु ने दया करके, आ..हा..! वीतराग-विज्ञान को साधन बोले, जिस वीतराग-विज्ञान को मैंने नमस्कार किया - ऐसे वीतराग-विज्ञान को साधनेवाले, उस वीतराग-विज्ञान की दशा में रहनेवाले, उस पूर्ण वीतराग-विज्ञान को प्राप्त करने के अभिलाषी... परन्तु वीतराग मुनि है। जिन्हे अन्दर में तीन कषाय (चौकड़ी) का अभाव हुआ है और ज्ञान की निर्मलता, स्वसंवेदन की वीतरागी-विज्ञानता अन्दर में प्रगट हुई है - परन्तु अपूर्ण - ऐसे गुरु दया करके, जगत पर करुणा करके (उपदेश देते हैं।) अरे...! जगत के प्राणी। अनादिकाल से चौरासी के अवतार में दुःखी है, उन्हें अब किञ्चित् सुख की इच्छा होने पर भी

सुख प्राप्त नहीं होता, उन पर करुणा करके, '**दुःख का नाश करनेवाली...**' देखो ! यह शिक्षा। यह सब शिक्षा की व्याख्या है। शिक्षा कैसी है ? कि '**दुःख का नाश करनेवाली और सुख देनेवाली**' अस्ति-नास्ति से बात की है।

ये आचार्य, सन्त, मुनि वीतराग विज्ञान के साधक, इन्होंने दुःख का नाश करनेवाली, सुख को उत्पन्न करनेवाली ऐसी शिक्षा अर्थात् उपदेश (दिया है।) एक सिद्धान्त में कितना भरा है, देखो ! विकार का नाश करनेवाली और आनन्द को उत्पन्न करनेवाली; निर्विकल्प दशाको उत्पन्न करनेवाली। विकार का नाश करनेवाली और निर्विकारी दशा को उत्पन्न करनेवाली। देखो ! इसमें अन्दर यह वीतरागता आयी। ऐसी शिक्षा गुरु-सन्तों ने दी है।

यहाँ तो आचार्य यह कहते हैं कि भाई ! गुरुने यह सीख (शिक्षा) दी है, उसमें से मैं यह बात करूँगा - ऐसा कहते हैं। महा दिगम्बर सन्तो, आचार्योंने गागर में सागर भर करके थोड़े में बहुत कहूँगा। '**दुःख का नाश करनेवाली...**' आहा..हा..! ठीक ! और '**सुख को देनेवाली...**' जीव, सुख को चाहते हैं, इसलिए सुख को देनेवाली... इसका अर्थ यह है कि आत्मा की निर्विकारीदशा होनेवाली शिक्षा अर्थात् सीख; देखो ! यह उपदेश ! इन गुरु का यह उपदेश (है।) यह उपदेश का सार कहा। उपदेश कैसा होता है ? वह 'इष्टोपदेश' में आता है न ? इष्टोपदेश (में) आता है कि इष्ट अर्थात् प्रिय उपदेश किसे कहना ? कि जगत के प्राणी अपनी पर्याय का काम करे, (गति करे), तब जैसे धर्मास्ति निमित्त है, उसी प्रकार सभी कार्यों में एक जगत साधारण उदास निमित्तरूप है, ऐसा उपदेश, उसे इष्ट उपदेश कहते हैं। इस प्रकार दुःख का नाश करनेवाली और आनन्द को देनेवाली दशा का उपदेश, उसे सच्ची शिक्षा, उपदेश कहा जाता है। आहा..हा..! समझ में आया ?

इसका अर्थ ही यह हुआ कि वीतराग-विज्ञानता को केवलज्ञान को जो नमस्कार किया, उस केवलज्ञान के उत्पन्न करानेवाली, विकार की अभावदशा और निर्विकार की उत्पत्तिवाली ऐसी शीख, भगवानने - सन्तोने चार अनुयोगों में दी है, वह बात मैं कहूँगा - ऐसा कहते हैं। '**शिक्षा-सीख देते हैं...**' शिक्षा कौन ले सकता है ? संज्ञी प्राणी। यह भी आया न ? शिक्षा कौन ले सकता है ? कि यह संज्ञी (प्राणी), संज्ञी प्राणी हो, वह शिक्षा के योग्य है और उसे गुरु, शिक्षा देते हैं। इसका अर्थ यह कि जिसे इतना क्षयोपशमज्ञान है कि (जो) शिक्षा को समझ सकता है, उसे यह

गुरु शिक्षा देते हैं।

'**(कहैं)...**' शिक्षा कहते हैं - ऐसा कहकर गुरु की वाणी भी... यहाँ तो गुरु देते हैं न ? ऐसा कहते हैं न ? उस वाणी द्वारा जगत को उपदेश करते हैं। वाणी में यह आयेगा - दुःख का अभाव हो और सुख की प्राप्ति हो, बस ! इसमें पूरा मोक्षमार्ग आ गया। समझ में आया ? आत्मा के स्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान और शान्ति, वह मोक्ष को - आनन्द को देनेवाली (और) मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान का नाश करनेवाली, दुःख का अभाव करनेवाली - ऐसी शिक्षा, सन्तोने आचार्योंने दी है। यह बात करेगें।

'**तीनलोक में जो अनन्त जीव (प्राणी) है, वे दुःख से डरते हैं...**' कोई कहता है - किन्तु तीन लोक में एकेन्द्रियजीव है, वे दुःख से डरते हैं ? हाँ, वे अन्दर अव्यक्तरूप से दुःख से डरते हैं। समझ में आया ? अनन्त प्राणी से व्याख्या ली है न ? जीव का स्वभाव ही ऐसा है, एक न्याय से देखें तो; क्योंकि वह आनन्दमूर्ति है, इसलिए सुख को ही चाहता है और दुःख से दूर होना चाहता है - ऐसा उसका स्वरूप ही है। देखो न ! यह सिर पर आपदा आवे या प्रतिकूलता आवे, उसे दूर करने को 'शरीर छोड़कर भी (दुःख) दूर करुं और सुखी होऊँ' - इसका अर्थ क्या होता है ? प्रतिष्ठा (न) हो, पैसा न हो, निर्धन हो - इतनी आपदा इसे कठोर लगती है कि शरीर को छोड़ना सरल लगता है। शरीर को छोड़ना सरल लगता है और आपदा कठोर लगती है। शरीररहित, अर्थात् अकेला रहकर भी, सुखी (होऊँ) - ऐसा हुआ है या नहीं अन्दर ? अकेला रहकर - शरीररहित रहकर भी दुःख से रहित होऊँ। शरीररहित; दूसरे साधन तो कहाँ गये ? मरे तब होता है न ? मर जाता है, नहीं ऐसे ? हाय ! दुःख से मर जाऊँ, छोड़ दूँ। भाई...! भाई ! यह क्या लगा रखा है इसने ? हैं ? भटकना है, कहते हैं।

यहाँ कहते है कि अन्दर में देहरहित होकर भी सुखी होना चाहता है - इसमें यह अव्यक्तरूप से सिद्ध होता है कि शरीर बिना अकेला रहूँ, परन्तु मैं सुखी होऊँ - तो इसका अर्थ यह कि मेरे अकेले में अन्दर सुख है, परन्तु इसे भान नहीं है, इसलिए शरीर छोड़कर फिर नरक-निगोदमें जाएगा। समझ में आया ? यह तो प्रसत होता है, आप क्यों ऐसा ढ़ीला बोले ? कहो, समझ में आया ? ऐसा छोडूँ, जहर पीकर मरे - इसका अर्थ इतना सिद्ध होता है कि शरीर का साधन भी न रहे तो मैं अकेला सुखी होऊँगा - ऐसा अव्यक्तरूप से अन्दर में भाव (होता है), परन्तु भान नहीं,

भान नहीं। मूढ़ ! शरीररहित होकर फिर सुख कहाँ है ? - यह पता नहीं है, परन्तु सुख के लिए छटपटाहट और तड़पड़ाहट तो है इसकी। भाई ! है ?

मुमुक्षु :- निगोद के जीव को रोग...

उत्तर :- रोग ही बड़ा, पूरा सदा ही रोग ही है। निगोद के जीव को रोग ही बड़ा पड़ा है। 'आत्म भ्रान्ति सम रोग नहीं।' 'आत्म भ्रान्ति सम रोग नहीं' - उसे इस भ्रान्ति का बड़ा रोग पड़ा है। निगोद के जीव का बड़ी भ्रान्ति-भ्रम है। चैतन्य आनन्दमूर्ति है, उसकी खबर नहीं हैं (- यह) बड़ा भ्रम पड़ा है, वह महादुःखी है। सब कहेंगे, देखो न यहाँ !

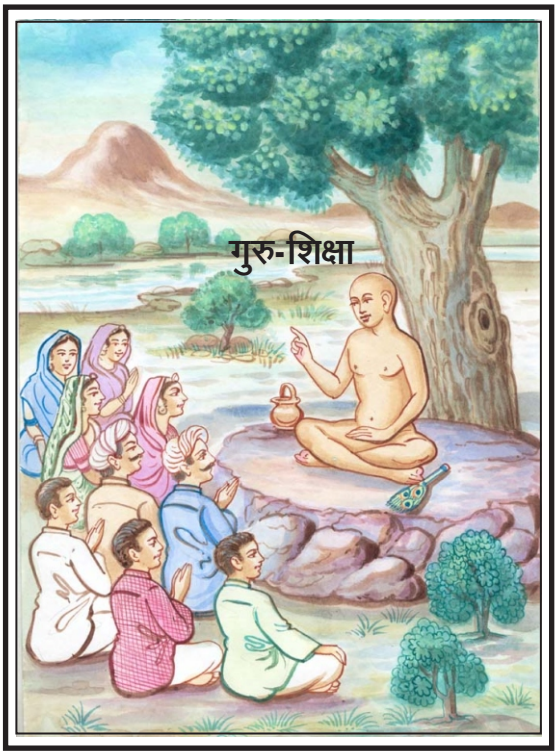

इसलिए आचार्य महाराज '**दुःख का नाश करनेवाली और सुख को देनेवाली शिक्षा देते हैं...**' ऐसी शिक्षा आचार्य महाराज देते है - ऐसा कहा, देखा ? देखो ! इसमें लिखा है, देखो ! यहाँ गुरु बैठे हुए हैं, देखो ! यह मुनि, नग्नमुनि, दिगम्बर मुनि, एक जगह कहीं लिखा है, हो ! गुरु अर्थात् दिगम्बर मुनि - ऐसा किसी प्रति में लिखा है, किसी प्रति में है, वह सही है। यहाँ लिखा है न - देखो न ! यहाँ दिगम्बर मुनि सामने विराजमान है, देखो ! चार व्यक्ति। समझ में आया ? उन्हें शिक्षा देते है। शिक्षा देते हैं - ऐसा करके ऐसा बहुत सरस... दिगम्बर मुनि, महामुनि ! वीतराग - विज्ञान साधक ! जिन्हें एक लंगोटी का धागा भी नहीं है। मोरपिच्छी, कमण्डल - यह तो उपचरित, अपवादिक उपकरण हैं। अन्तर में महा आत्मा का साधन कर रहे हैं, उसमें से विकल्प आया; जगत पर करुणा आयी है और उपदेश होता है। कहो, ऐसी शिक्षा देते हैं। लो ! यह पहला श्लोक (पूरा) हुआ। वह पहला (श्लोक था, वह) मंगलाचरण का था। यह ग्रन्थ का पहला श्लोक है।

गुरुशिक्षा सुननेका आदेश तथा संसार-परिभ्रमणका कारण

ताही सुनो भवि मन थिर आन, जो चाहो अपनो कल्यान;
मोह महामद पियो अनादि, भूल आपको भरमत वादि।।२।।

अन्वयार्थ :- (भवि) है भव्य जीवो ! (जो) यदि (अपनो) अपना (कल्याण) हित (चाहो) चाहते हो [तो] (ताहि) गुरु की वह शिक्षा (मन) मनको (थिर) स्थिर (आन) करके (सुनो) सुनो [कि इस संसारमें प्रत्येक प्राणी] (अनादि) अनादिकाल से (मोह महामद) मोहरूपी महामदिरा (पियो) पीकर, (आपको) अपने आत्मा को (भूल) भूलकर (वादि) व्यर्थ (भरमत) भटक रहा है।

भावार्थ :- हे भद्र प्राणियो ! यदि अपना हित चाहते हो तो, अपने मनको स्थिर करके यह शिक्षा सुनो ! जिस प्रकार कोई शराबी मनुष्य तेज शराब पीकर, नशे में चकचूर होकर, इधर-उधर डगमगाकर गिरता है, उसी प्रकार यह जीव अनादिकाल से मोह में फँसकर, अपनी आत्मा के स्वरूप को भूलकर चारों गतियों में जन्म-मरण धारण करके भटक रहा है।।२।।

दूसरा (श्लोक)। '**गुरुशिक्षा सुनने का आदेश...**' गुरु, सुनने को कहते हैं। ध्यान रखकर सुन ! कहते हैं - सब छोड़कर यह सुनने में ध्यान रख - ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! '**और संसार परिभ्रमण का कारण...**' इसका भी (चित्र) रखा है न ?

ताही सुनो भवि मन थिर आन, जो चाहो अपनो कल्यान;
मोह महामद पियो अनादि, भूल आपको भरमत वादि।।२।।

अद्भुत भाषा ! यह लड़को के हाथ में है या नहीं ? हाँ, ऐसा कहते हैं। यह तो तुम्हें बहुत बार सिखाते हैं। पहला शब्द लिया है, '**हे भव्य जीवों !**' यहाँ भव्य से शुरुआत की है। भव्य जीव,

जो मोक्ष के लिए अभिलाषी है और मोक्ष के योग्य जीव है, उसे कहते हैं - हे लायक प्राणी ! यहाँ सम्बोधन किया है - '**हे भव्य जीवो ! यदि अपना हित चाहते हो तो...**' यहाँ एक सिद्धान्त है। यदि अपना हित चाहते हो तो। एक शब्द यहाँ से लिया है - तुझे यदि हित की चाहना-भावना होवे तो। यहाँ 'तो' रखा है, हाँ ! चाहते हो तो - ऐसा कहा है न !

'**जो चाहे अपनो कल्यान।**' तुम्हे हित चाहिए हो तो, हित-हित; अहित तो अनन्त काल से कर ही रहा है। यदि अपना हित चाहते हो तो '**गुरुकी वह शिक्षा...**' मन में... देखो...! मन में स्थिर करके सुनो। '**मन को स्थिर करके सुनो...**' काया-बाया स्थिर बैठी है या नहीं, '**मन को स्थिर करके सुनो...**' ऐसा कहते हैं। ध्यान रखकर सुनो। जैसे, प्रियवान संसार की प्रिय वार्ता मन स्थिर करके सुनता है; इसी तरह तुझे तेरे हित की इच्छा होवे, आत्मा का हित कैसे हो ? शान्ति कैसे हो ? सुख कैसे हो ? - ऐसे हित की कांक्षा हो तो उन धर्मात्मा गुरु की शिक्षा मन को स्थिर करके आन-स्थिर करके (सुनो)। मन को स्थिर करके (अर्थात्) दूसरे विकल्प छोड़कर सुनो... आदेश किया है।

देखो ! अन्दर शब्द है न ? आदेश शब्द शीर्षक में (उपोद्घात में) दिया है - गुरु-शिक्षा सुनने का आदेश - यह 'आदेश' शब्द प्रयुक्त किया है। यहाँ भी '**सुनो**' - ऐसा कहा है न ? सुनो ! इस पर तो बड़ा वजन है उसमें... पाहुड़ में, 'सुनो' शब्द की व्याख्या बहूत लम्बी की है। 'जयधवल'। 'सुनो' शब्द की व्याख्या की - सुनो ! ऐसा कहकर गुरु, जगत को सत्यवार्ता सुनने के लिए उत्तेजित करते हैं, सावधान करते हैं। दूसरी बात छोड़ दे, दूसरे विकल्प छोड़ दे; हम जो यह शिक्षा कहते हैं, उसे सुनने में मन को स्थिर कर। सुनने की बहुत लम्बी व्याख्या की है। एक-एक शब्द सूत्र है अवश्य न ? पाहुड़ में। सुनो ! अर्थात् मन के दूसरे विकल्पों को छोड़कर, यह हित की बात कहते हैं, उसे सुनने में सावधान, तत्पर हो। कहो, समझ में आया ? यह हिन्दी तो बहुत साधारण भाषा है। मूल भाषा में कुछ बहुत (कठिनता) नहीं है और हमने तो यह गुजराती किया है।

'**इस संसार में प्रत्येक प्राणी अनादि काल से...**' यह सिद्ध किया। '**जो चाहो अपनो कल्यान...**' ऐसा है न ? अपना कल्याण चाहो, अर्थात् कल्याण, अर्थात् हित। कल्याण की

व्याख्या ही हित है। कल्याण की चाहना हो, हित की चाहना हो, आत्मा की शान्ति -सुख की प्राप्ति करने की चाहना हो तो हित की व्याख्या गुरुकहेगे, यहाँ दूसरी व्याख्या उनके पास नहीं है। समझ में आया ? पैसा कैसे मिले ? तुम्हारे पुत्र कैसे हो ? - यह बात यहाँ शिक्षा में नहीं है (-ऐसा) कहते हैं। हैं ? महाराज ! हमें यह पैसा-वैसा देदो; हाथ रखो, ऐसे अमुक हो जाए, हमारे यह हो जाए, फिर हम निरन्तराय धर्म (करेंगे)। कहते हैं कि शिक्षा में यह कोई बात नहीं आती। यहाँ तो कल्याण चाहता हो तो कल्याण की बात मन को स्थिर करके सुनो - एक बात कहते हैं। कल्याण की बात आती है, दूसरी कोई बात यहाँ नहीं है। ऐसे स्वयं ग्रन्थकर्ता आचार्य के उपदेश में यह आता है - ऐसा स्वयं सिद्ध करके साक्षी से बात करते हैं। आहा...हा...!

इस संसार में प्रत्येक प्राणी 'मोहमद पियो अनादि' - '**मोह महामद पियो अनादि।**' भाषा देखो ! '**अनादि काल से...**' अनादि अर्थात् निगोद से लेकर। क्या कहा ? वे निगोद के जीव नित्यनिगोद में पड़े हैं, जिसमें अभी कितने ही जीव ऐसे हैं कि कभी त्रस नहीं हुए, लट नहीं हुए, चीटी-मकोड़ा नहीं हुए; मनुष्य तो कहाँ से होंगे ? ऐसे अनादि के जीव निगोद में पड़े हैं; वहाँ से लेकर अनादि काल से; फिर मनुष्य हुआ, देव हुआ, पशु हुआ, पंचेन्द्रिय हुआ आदि। अनादिकाल से (कहकर) यह नयी बात नहीं है - ऐसा कहते हैं। मोहदशा नयी नहीं है - ऐसा कहते हैं। जैसे, इसका शुद्धस्वरूप अनादि पवित्र पड़ा है, वैसे ही यह मोहदशा भी इसके पास अनादि की है; मोहदशा फिर नयी लगी है - ऐसा नहीं है।

अनादि काल से '**मोहमहामद...**' मोहरूपी तेज शराब ! तेज शराब ! तेज शराब ! तेजवाली शराब । शराब होती है न ? बहुत ऐसी शराब होती है, तेज... तेजदार होती है न ! पीते हों, '**मोह महामद...**' मिथ्यात्व की बात साथ में मुख्य लेना है न ? मिथ्यात्वरूपी महामोहरूपी तेज शराब पी है। अनादिकाल से अज्ञानी ने एकेन्द्रिय से लेकर... आहा...हा...! नौवें ग्रैवेयक मिथ्यात्व सहित गया, वे सब प्राणी महामोहमद पियो... भ्रम का महामद पिया है - शराब, तेज शराब - तेज शराब । शराब पीते हैं न, फिर एकदम ऐसी तेज शराब (पीने के) बात कलेजा घनधना जाए ऐसा (फिर) नशे में पड़ता है।

'पालेज' मे मजदूर होते थे, मजदूर। प्रतिदिन पाँच-पाँच रूपये, दश-दश, सात-सात रूपये

पेदा करते, फिर सायंकाल जाकर बारह आने की शराब पी आये। दुकान साथ में थी, उसका बड़ा था, फिर पागल होकर पड़े। पूरे दिन की थकान लगी होवे न, वह थकान दिखे (महसूस) नहीं हो इसलिए। इसीप्रकार अनादि से अज्ञानीने महा मिथ्यात्व की शराब पी रखी है। देखो, इसने अनादि से मिथ्यात्व कि मदिरा पी रखी है, हो ! नया नहीं है।

'**मोहरूपी तेज शराब...**' ऐसा कहकर क्या कहा ? अनादि से कर्म इसे भटकाते हैं और कर्म ने यह नुकसान कराया है - ऐसा नहीं है। ऐसा कहा या नहीं इसमें क्या कहा ? तुझे अनादि से कर्म ने मार रखा है - ऐसा नहीं कहा, देखो ! 'दोलतरामजी' भी (ऐसा कहते है कि) आचार्य इस प्रकार कहना चाहते हैं - ऐसा हम कहते हैं। क्या कहा है वह ? अनादिकाल से मोहमहामद पियो, मिथ्यात्वरूपी जहर - महामदिरा तूने पीयी है, कर्म ने कुछ कराया है - ऐसा नहीं है - ऐसा कहते हैं। ओहो...हो...! पहली ही भूल में यह बात करते हैं, लो !

दूसरे लोग कहते हैं कि अनादिसे दर्शनमोह के कारण (परिभ्रमणकिया)। इन भगवान के पास गया न ! निमित्त तो अच्छा था न ? क्यों नहीं समझता, यदि निमित्त से समझता होवे तो ? तब कहते है - इसे दर्शनमोह का कर्म पड़ा (था) निमित्त कठोर था, उसके कारण नहीं समझता। आहा...हा...! है ? ऐसा स्पष्टीकरण में (अज्ञानी) कहते हैं। हैं ? समझ बिना के।

यहाँ तो स्वयं कहते हैं - '**मोह महामद पियो अनादि, भूल आपको भरमत वादि...**' देखा ? भूलने का कारण बताया ! महामोहरूपी जलद अर्थात् तेज शराब अर्थात् तीव्रतायुक्त मिथ्यात्व को - भ्रम की मदिरा पी ली है। तूने पी है, तूने किया है, किसी ने कराया नहीं है। भगवान आत्मा, अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति है, उससे विरूद्ध होकर तूने मिथ्यात्व की शराब... एकेन्द्रिय से लेकर... हाँ! जगत के एकेन्द्रिय प्राणी भी मोहमहामद - मदिरा पीने के कारण पड़े हैं - ऐसा कहते हैं। 'गोम्मटसार' में आता है न ? - कलंक - प्रचुर कलंक, प्रचुर भावकलंक; भाव की प्रचुर कलंकता के कारण पड़ा है, देखो ! उन्होंने यह वचन यहाँ दूसरी गाथा में लिखा है, लो ! समझ में आया ?

क्यों भटकता रहा ? और कैसे किया ? कि मोह महामद पिया इसलिए; कर्म के ज़ोर के कारण भटकता रहा और भ्रान्ति हुई - ऐसा नहीं है। आहा...हा...! अब इस 'छहढाला' में तो

ऐसी बात डाली है। कहो है ? यह पाठशाला में पढ़ाते हैं।

देखो ! '**(आपको) अपने आत्मा को भूलकर...**' देखो ! मिथ्यात्व की तीव्र मदिरा (पिया), जो अपना स्वरूप नहीं है, उसे (अपना) मानकर और जो अपना स्वरूप है, उसे भूलकर... ऐसा कहा है; देखा ? मोहरूपी शराब पी है, इसलिए जो अपना स्वरूप नहीं है, उसे (अपना) मानकर और अपने स्वरूप को भूलकर - ऐसा कहते हैं। देखो ! समझ में आता है ? किस कारण से ? इस विपरीत पड़े हुए तेरे मोह के कारण से - ऐसा कहते है यहाँ तो। आहा...हा...! छहढाला में ऐसी बात ! गागर में सागर भरी हुई बातें करते हैं। और फिर वापिस डाले तब कर्म के कारण होता है - ऐसा कहते हैं, लो ! यह यहाँ ऐसा कहा होगा, परन्तु यह बात पहले से ही शुरू की है यहाँ; और गुरु इसे सीख देते हैं - इसका अर्थ क्या हुआ ? इसे सीख देते है - इसका अर्थ (क्या) ? कि तू भूला है, तुझसे भूल मिटाने की बात करते हैं। हम कर्म का कहते है ? भाईसाहब ! कर्म ने इसे दुःख कराया है, भ्रम कराया है। कर्म को कहते हैं ? दूर हट ! उपदेश तो उसे देते हैं, जो भूल है, उसे भूल मिटाने का उपदेश हो सकता है। कर्म भूला है ? कर्म ने भूलाया है ? समझ में आया ?

फिर '**पियो...**' - ऐसा कहा है न ? तूने पी है मदिरा - ऐसा कहा, देखो न ! '**मोहमहामद पियो...**' तूने पी है। विपरीत मान्यता - मिथ्याश्रद्धा (अर्थात्) जो तेरी वस्तु नहीं है, उसे / पर को अपना-मानना यह महामदिरा तूने पी है।

मुमुक्षु :- जैन शराब पीये ?

उत्तर : वह यह मिथ्यात्व की मदिरा पीता है। जैन अर्थात् क्या ? उस शराब की बात कहाँ है ? यह भाषा कैसी प्रयोग की है, देखो न ! '**मोहमहामद...**' अन्दर महामद चढ़ गया है।

इसमें दृष्टांत दिया है न ? है ? देखो, दिया है, हाँ, देखो देखो ! यह शराब पी है। देखो, यह पागल हो जाता है, देखो ! हाथ में बोतल है ऐ...से...! यहाँ एक बहुत शराब पिये हुए है और वह पड़ता है। पड़ता है फिर कुत्ता चाटता है, देखो ! एक पड़ते-पड़ते रह गया है, यह रखा; एक ने पी, पड़ते-पड़ते रखा और एक पड़ा - ऐसे तीन डाले है। समझ में आया ? एक स्त्री यहाँ बताई है, गोद में लड़का है, वह ऐसे कि मोह में पड़ी है ऐसे। मोह मदिरा में... मेरा लड़का.. मेरा लड़का। इस मोह में यह शराब पीकर ऐ...सा... पागल हो गया है। है चित्र ? पहला शराब पीकर थोड़ा... दूसरा ऐसे लड़खड़ाते पैरों से आया ए... पंडितजी ! जरा ऐसा लड़खड़ाया... सीधा लड़खड़ाकर पड़ा है। पड़ा और वह कुत्ता उसे चाटता है, देखो, पीछे ! समझ में आया ?

आहा...! जैसे शराब पीकर ऐसे हेरान-हेरान होता है, वैसे ही महा मिथ्यात्वरूप शराब पीकर, यह मेरी स्त्री और यह मेरा पुत्र और यह मेरा पति और यह मेरा शरीर और यह मेरा यह... ऐसे करते-करते जाए...भटकते... भटकते पड़कर नीचे। शराब पीये हुए मनुष्य, जहाँ मल-मूत्रादि हो, वहाँ पड़ जाते हैं। नीचे मल-मूत्र (हों) वहाँ पड़ जाता है और कुत्ता आकर, मुँह खुला हो तो उसमें पेशाब करता है। कहो, समझ में आया ?

मोह के मारे चार गति मे भटकते हैं। स्त्री-पुत्र, मुझे हेरान करते हैं, परन्तु ऐसे धक्का मारे, गाली दे, भान बिना के, तुमने तो ऐसा किया, तुम्हें कुछ नहीं, ये दूसरे देखो न कैसे ? ये मुँह फाड़कर मुँहमें पेशाब डाले तो यह प्रसत होता है। अर...र...र...! समझ में आया ? ठीक चित्रित किया है, हों ! महामद की व्याख्या वही... वही... खराब (की है।) मोह अर्थात् ममता, अहंभाव किया है, लो ! और कल्याण का अर्थ किया है - भलाई अथवा सुख। यह यदि तुम्हें चाहिए हो तो कहते हैं कि तुमने आत्मा को भूलकर मोह की मदिरा (पी है, उसे छोड़ो।) वादि अर्थात् व्यर्थ; मुफ्त वह मोह है न (उसकी) व्याख्या। वादि अर्थात् मोह से व्यर्थ भटकता है, मुफ्त में भटकता है। मोह की व्याख्या ही मुफ्त/ व्यर्थ इस प्रकार होती है। जो स्वरूप में नहीं है - ऐसा निरर्थक मोह उत्पन्न करके; और भ्रम का स्वभाव आत्मा का नहीं है, भटकने का नहीं है और

व्यर्थ-निरर्थक भटकता है। चौरासी के अवतार में ऐकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय (गति में) भटकता है।

'**(भावार्थ :-) हे भद्र प्राणियों ! यदि अपना हित चाहते हो...**' हित चाहते हो। 'श्रीमद्' कहते हैं न ? 'जो इच्छो परमार्थ तो...' आता है या नहीं ? है ? 'जो इच्छो परमार्थ तो' - परमार्थ चाहते हो तो कहते है, वरना न हो तो (नहीं कहते)। 'करो पुरुषार्थ' - आता है ? 'करो सत्य पुरुषार्थ' 'जो इच्छो परमार्थ तो...' बाकी क्या कहै ? यदि तू मोक्षार्थी हो तो तुझे यह बात कहते हैं।

ऐसा कहते हैं, अपना हित चाहते हो तो '**अपना मन स्थिर करके यह शिक्षा सुनो।**' शिक्षा, गुरु जो ज्ञान से बात करते हैं, उस बात को सुन, जिसमें शिक्षा रही है, जिसमें तेरा हित रहा है, उसे सुन। '**जिस प्रकार कोई शराबी, शराब पीकर, नशे में चकचुर होकर...**' देखा ? शराब पीकर फिर चकचूर हुआ... '**जहाँ-तहाँ लड़खड़ाता है...**' लड़खड़ाकर है न उसमें ? देखो न ! यह (जीव) भी जहाँ-तहाँ लड़खड़ाता है, निगोद में और यहाँ और वहाँ। स्त्री, पुत्र, अमुक व्यापार, धन्धा, शराब पीकर जहाँ-तहाँ लड़खड़ाता है निरर्थक ! समझ में आया या नहीं ?

भाई ! यह शरीर ... यह भी मोह की शराब पीकर भटक रहा है - ऐसा कहते हैं। मोह की शराब पी रखी है। शरीर मिटे परन्तु शरीर मिटे तो तुझे क्या है किन्तु ? मिथ्यात्व की शराब पीकर जहाँ-तहाँ भटका-भटक, भटका-भटक करता है। नशा (करके) नीचे गिरता है न ? ऐ...से...! मुँह फाड़े और कुत्ता हंगे (पेशाब करे) तो इसके मुँहमें आ जाता है, तो भी गटककर पी जाता है। आहा...हा...! महामिथ्यात्व के ज़ोर में ऐसी प्रतिकूलता या अनुकूलता हो, उसमें राग-द्वेष करके, राग-द्वेष करके अन्दर मिथ्यात्व का ज़हर चढ़ गया है। मिथ्यात्व, मूल मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व महा मोह; राग-द्वेष तो अस्थिरता के है।

'**जहाँ-तहाँ लड़खड़ाकर गिरता है...**' जहाँ-तहाँ, ऐसे। फिर कोई मेल रहता है कि शराब पीकर कहाँ पड़ता है ? ऐसा कि भाई ! योग्य रहकर गिरे या इस जगह गिरे, मूत्र (होवे) अरे...! विष्टा बाहर डालकर आये हों, वहाँ जाकर गिरता है। वहाँ रास्ते में एक शराबखाना नहीं है ? 'राजकोट' में ! एक बार (उधर से) निकले ते तो एक शराब पीकर निकला था,

ऐ..से..! वे खेत में मलादि डाल आते है न ? वह क्या कहलाता है ? नगरपालिका के डिब्बे भरकर, वहाँ भटकता है, खेत में, कुछ भान नहीं है कि किस तरफ जाता हूँ ? वह विष्टा का ढेर पड़ा हो, वहाँ फटा..क देकर ऐसे गिर जाता है। समझ में आता हे ?

इसी प्रकार मिथ्यात्व की शराब पीये हुए चार गति में जहाँ-तहाँ भटकता है - ऐसा कहना है न ? जहाँ-तहाँ कोई एकेन्द्रिय में, कोई पंचेन्द्रिय में, कोई नरक में, कोई देव में - सब मिथ्यात्व के शराब पीकर भटक रहे हैं। '**उसी प्रकार यह जीव अनादिकाल से मोह में फँसकर...**' स्वयं मोह में फँसा है, हाँ ! कर्म ने नहीं फँसाया है । यहाँ ऐसी बात करते है, उसे नहीं समझता, क्या करना ? कहो ! है ? '**मोह में फँसकर, अपने आत्मा के स्वरूप को भूलकर...**' लो ! यहाँ से शुरु किया है पहले ! देखा ! '**भूल आपको...**' है न ? अपने स्वरूप को भूला है, बस ! यह इसकी बात। मिथ्यात्व के भ्रम में अनादि से निगोद से लेकर,... इसमें सब आये या नहीं ? दिगम्बर मुनि नौवें ग्रैवेयक तक गया, वह भी मोह की, मिथ्यात्व की मदिरा में चकचूर हो कर अपने को भूल गया है - ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? '**अपने आत्मा के स्वरूप को भूलकर...**' स्वयं भूलकर '**भूल आपको भरमत - चारो गति यों में जन्म-मरण धारण करके भटकता है।**' चौरासी के अवतार में जहाँ सुख नहीं है, वहाँ भ्रम से सुख खोजता है और आत्मा के सुख को भूलकर चारों गतियों में दुःख में भटक रहा है।

इस ग्रन्थ की प्रमाणिकता और निगोद का दुःख

त्रास भ्रमनकी है बहु कथा, पै कछु कहूँ कही मुनि यथा;
काल अनन्त निगोद मँझार, वीत्यो एकेन्द्री तन धार।।३।।

अन्वयार्थ :- (तास) उस संसारमें (भ्रमनकी) भटकनेकी (कथा) कथा (बहु) बड़ी (है) है (पै) तथापि (यथा) जैसी (मुनि) पूर्वाचार्योंने (कही) कही है [तदनुसार मैं

भी] (कछु) थोड़ी-सी (कहूँ) कहता हूँ [कि इस जीव का] (निगोद मँझार) निगोदमें (एकेन्द्री) एकेन्द्रिय जीवके (तन) शरीर (धार) धारण करके (अनंत) अनंत (काल) काल (वीत्यो) व्यतीत हुआ है।

भावार्थ :- संसार में जन्म-मरण धारण करनेकी कथा बहुत बड़ी है। तथापि जिस प्रकार पूर्वाचार्यों ने अपने अन्य ग्रन्थों में कही है, तदनुसार मैं (दौलतराम) भी इस ग्रन्थमें थोड़ी-सी कहता हूँ। इस जीवने नरकसे भी निकृष्ट निगोदमें एकेन्द्रिय जीव के शरीर धारण किये अर्थात् साधारण वनस्पतिकाय में उत्पन्न होकर वहाँ अनंतकाल व्यतीत किया है।।३।।

अब तो ऐसा सिद्ध करना चाहते है कि '**इस ग्रन्थ की प्रामाणिकता...**' मोक्षमार्ग (प्रकाशक) मैं कहते हैं न कि यह ग्रन्थ की प्रामाणिकता सिद्ध करते है। मेरे घर की कल्पना की बात नहीं है। '**ग्रन्थ की प्रामाणिक्ता और...**' पहले '**निगोद का दुःख।**' भ्रम के कारण महादुःख प्राप्त किया। वह प्रथम निगोद के दुःख से शुरू करते हैं। इस मिथ्यात्व की व्याख्या बाद में करेंगे, परन्तु इस मिथ्यात्व से ही अनादिकाल में यह निगोद में भटका है। निगोद में भी मिथ्यात्व के कारण रहा है - ऐसा सिद्ध करते हैं पहले से - शुरू से, एकेन्द्रिय निगोद से इसके दुःख (कहते हैं।)

त्रास भ्रमनकी है बहु कथा, पै कछु कहूँ कही मुनि यथा;
काल अनन्त निगोद मँझार, वीत्यो एकेन्द्री तन धार।।३।।

'**तास भ्रमन की है बहु कथा, वै कछु कहूँ कही मुनि यथा;,...**' देखा ! यह भी मुनि कहते हैं - ऐसा मैं कहूँगा - यह कहते हैं। '**तास भ्रमन की है बहु कथा पै कछु कहूँ कही मुनि यथा;...**' स्वयं उत्तरदायित्व लेते (कहते हैं कि) मुनियों ने कही है; सन्तों ने, वीतराग ज्ञानियों ने कही है - वह बात मैं तुमसे कहूँगा। प्रामाणिकरूप से भगवान निगोद के दुःख का वर्णन कहते हैं, वह बात कहूँगा। देखो ! ऐसा कहकर पहली पंक्ति में ग्रन्थ की प्रामाणिकता स्थापित की है।

'**त्रास भ्रमन की है वहु कथा,...**' मिथ्यात्व की। '**पै कछु कहूँ,...**' किन्तु थोंड़ी कहूँगा। '**कही मुनि यथा;...**' जैसी मुनियों ने कही है, वैसी बात मैं करूँगा; मेरे घर की कल्पना की कोई बात नहीं करूँगा।

'**काल अनंत निगोद मँझार, वीत्यो एकेन्द्री तन धार।**' यहाँ से बात शुरु की है। अनन्त काल निगोद मँझार पड़ा, वहाँ से एकेन्द्रिय तन धारण किया, उसमें अनन्त दुःख सहन किया। ओ...हो...हो...! वह सब मिथ्यात्व के कारण (धारण किया) - ऐसा सिद्ध करता हैं, हाँ ! क्या ? मिथ्यात्व के कारण दुःख प्राप्त किया। सम्यग्दर्शन के कारण सुख पाता है, बस ! यहाँ एक ही बात कहना है (कि) ऐसी भ्रमणा के कारण निगोद के दुःख प्राप्त किये।

यह बात '**तास भ्रमन की**' (अर्थात्) '**भटकने की कथा बहुत बड़ी है...**' भाई ! आहा...हा...! कहते हैं कि तेरे भटकने की वार्ता तो बहुत बड़ी है, '**तथापि जैसी पूर्वाचार्यों ने कही है...**' देखो ! मुनि की व्याख्या की। महा कुन्दकुन्दाचार्य आदि महा मुनि, समन्तभद्राचार्य महामुनि। पूज्यपाद स्वामी आदि महामुनि, नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती दिगम्बर सन्त - उन्होंने जो कहा, भटकने की जो (कथा) कही है, यह बात मुनियों ने कही है, वह बात कहूँगा। '**उस अनुसार में भी थोड़ी सी कहता हूँ।**' ऐसा कहते हैं। '**कछु**' कहा है न ? सन्तों ने तो बहुत कही है, विस्तार से कही है, परन्तु मैं कुछ थोड़ी-सी कहुँगा।

'**इस जीव का... (निगोद मँझार) निगोद में एकेन्द्रिय जीव का शरीर धारण करके...**' देखो ! चैतन्यस्वरूप को भूलकर एकेन्द्रिय शरीर धारण किया। अनादि एकेन्द्रिय के शरीर में रहा। '**अनन्त काल व्यतीत हुआ है...**' समझ में आया ? '**काल अनन्त निगोद**' कहा है न ? '**अनन्त काल व्यतीत हुआ है।**' निगोद में एक शरीर, शरीर है न ? वाणी और मन तो नहीं है। एक तन-शरीर धारण करके अनन्तकाल निगोद में रहा है, वह मिथ्यात्व-भ्रम के कारण (रहा है।) वह दुःख कैसा है - यह विशेष कहेंगे।

(श्रोता :- प्रमाण वचन गुरुदेव !)